मसायल
का
बुनियादी हल

लेखक

सैय्यद मोहम्मद आलिम नक़वी

एक्ज़ीक्यूटिव एडीटर, उर्दू टाईम्स, मुम्बई

हिन्दी रूपान्तर

मोहतरमा रिज़वाना हुसैन

प्रकाशक

अल-मुर्तज़ा पब्लीकेशन्स

501-2, आरिफ़ आशियाना, लोहिया पार्क के सामने

चौक, लखनऊ-226003

मसायल का बुनियादी हल

लेखक
सैय्यद मोहम्मद आलिम नक़वी
एक्ज़ीक्यूटिव एडीटर, उर्दू टाईम्स, मुम्बई

हिन्दी रूपान्तर
मोहतरमा रिज़वाना हुसैन

प्रकाशक
अल–मुर्तज़ा पब्लीकेशन्स
501–2, आरिफ़ आशियाना, अपोज़िट लोहिया पार्क,
चौक, लखनऊ–226003

किताब का नाम	–	मसायल का बुनियादी हल
लेखक	–	सैय्यद मोहम्मद आलिम नक़वी
हिन्दी रूपान्तर	–	मोहतरमा रिज़वाना हुसैन
टाईप सेटिंग	–	यूनिटी प्रिन्ट सर्विसेज़
प्रथम संस्करण	–	2008
प्रकाशक	–	अल–मुर्तज़ा पब्लीकेशन्स 501–2, आरिफ़ आशियाना लोहिया पार्क के सामने चौकं, लखनऊ–226003
वेब साईट	–	**www.deenfahmi.org**
ई–मेल	–	**jawedmurtaza@yahoo.co.in**
फ़ोन	–	09415544115
मुद्रक	–	आर्ट ग्राफिक्स
मूल्य	–	रू0 15/–

जनाब आलिम नक़्वी साहब

प्रस्तुत पुस्तक जनाब आलिम नक़्वी साहब के लेख "मसायल का बुनियादी हल" के हिन्दी रूपान्तर पर आधारित है जो मशहूर उर्दू रोज़नामा "उर्दू टाईम्ज़", मुम्बई में 6 जुलाई 2008ई0 को शाया हुआ।

आलिम नक़्वी साहब सहाफ़त की दुनिया में नामवर शख़्सियत हैं और आलम–ए–इस्लाम और उसको दरपेश ख़तरात, इस्लामी मौज़ूआत और मुल्की व ग़ैर मुल्की सियासत पर उनके मज़ामीन, इदारिये और तबसिरे सनद की हैसियत रखते हैं और दुनिया भर में क़द्र की निगाह से देखे जाते हैं।

आलिम नक़्वी साहब इन्तिहाई मसरूफ़ शख़्स हैं मगर इसके बावजूद उन्होंने वक़्त निकाल कर किताब "फ़िक्र व फ़हम" और तहरीक दीन फ़हमी से मुताल्लिक़ यह मज़मून तहरीर किया जिसके लिए इदारा उनका शुक्रगुज़ार है।

यह मज़मून उर्दू के बहुत से अख़बारात व रिसालों में शाया हो चुका है। हम हिन्दी भाषा वालों के लिए इस मज़मून का हिन्दी रूपान्तर पेश कर रहे हैं।

आख़िर में हम मोहतरमा रिज़वाना हुसैन साहिबा का शुक्रिया अदा करना अपना फ़र्ज़ समझते हैं जिन्होंने जनाब आलिम नक़्वी साहब के मज़मून का हिन्दी में रूपान्तर करने की ज़हमत की।

अल–मुर्तज़ा पब्लिकेशन्स

लखनऊ

अल–मुर्तज़ा पब्लीकेशन्स

लोगों में फ़िक्री बेदारी लाने और इस्लाम के इनक़िलाबी पैग़ाम को सही ढंग से पेश करने के लिए एक ऐसे इदारे की ज़रूरत शिद्दत से महसूस की गयी जो दीन को सीधे और सच्चे ढंग से अवाम के समाने पेश कर सके।

इस ज़रूरत को पूरा करने के लिए 'अल–मुर्तज़ा पब्लीकेशन्स' का क़ियाम अमल में आया।

इस इदारे ने इससे क़ब्ल इमाम हुसैन(अ0) की सीरत व शहादत पर शेख़ मुफ़ीद की किताब और जावेद मुर्तज़ा साहब की किताब 'फ़िक्र–ओ–फ़हम' शाया की और अब यह तीसरी पेशकश 'मसायल का बुनियादी हल' आप के हाथों में है।

यह किताब यों तो मुख़्तसर है मगर यह तहरीक दीन फ़हमी की आईडियालोजी को अपने दामन में समेटे हुये हैं और इस लायक़ है कि इसको ज़्यादा से ज़्यादा लोग पढ़ें और शऊरी ईमान से आगाही हासिल करें।

अल–मुर्तज़ा पब्लीकेशन्स इस तहरीक में आप से तावुन करने की अपील करता है ताकि यह पैग़ाम ज़्यादा से ज़्यादा लोगों तक पंहुच सके।

शुक्रिया।

वस्सलाम

अल–मुर्तज़ा पब्लिकेशन्स
501–2, आरिफ़ आशियाना,
लोहिया पार्क के सामने, चौक,
लखनऊ–226003

मसाएल का बुनियादी हल

आज हम अपने कालम में भाई जावेद मुर्तज़ा एडवोकेट की किताब "फ़िक्र–ओ–फ़हम" पर बातचीत करके अपने एक क़र्ज़ को अदा करना चाहते हैं। लगभग साल भर पहले मोहतरम् क़लमकार ने जो हमारे एक तरह से रहबर भी हैं हम से इस किताब का पेश लफ़्ज़ लिखने की फ़रमाईश की थी जो ना मालूम हम क्यों पूरी नहीं कर सके और मार्च 2008 में किताब बग़ैर किसी पेश लफ़्ज़ के प्रकाशित हो गई। किताब छपने के बाद बग़ैर किसी शिकायत के उन्होंने हमसे किताब पर तबसिरा करने की ख़्वाहिश ज़ाहिर की लेकिन इसमें भी ग़ैर मामूली देर हो गई। अल्लाह हमें माफ़ करे और नेक तौफ़ीक़ दे कि हम आबगीनों को भी ठेस पंहुचाने के गुनाह से महफ़ूज़ रहें।

"फ़िक्र–ओ–फ़हम" दर असल लेखक की पहली किताब "दीन फ़हमी" का दूसरा हिस्सा है। दोनों किताबों में शामिल सब मिलाकर लगभग 150 मज़मून 1988 से 1991 के बीच हफ़्तेवार "पयामे नौ", लखनऊ में 'दीन फ़हमी' के उन्वान से लिखे गये मज़ामीन का संग्रह हैं लेकिन लगभग बीस साल पहले लिखे गये यह मज़मून आज इक्कीसवीं सदी के पहले दशक के ख़त्म के दौर में भी ज़िन्दा और ताज़ा हैं क्योंकि मुसलमानों की अकसरीयत आज भी शऊरी ईमान के बजाए तक़लीदी ईमान पर अमल पैरा, रहमत–ए–खुदा वन्दी से बेगाना और अज़ाब–ए–इलाही में मुब्तिला है। मिर्ज़ा जावेद मुर्तज़ा की तहरीक–ए–दीन फ़हमी का मक़सद मुसलमानों को तक़लीदे जामिद से निकाल कर 'शऊरी ईमान' के सीधे और आसान रास्ते पर गामज़न करना है ताकि हमारी बन्दगी अल्लाह के

लिए ख़ालिस हो जाये और जब हम 'नहनु लहू मुख़लिसून' कहें तो फ़रिश्ते गवाही दें कि हाँ यह बन्दा सच बोल रहा है।

मिर्ज़ा जावेद मुर्तज़ा का कहना है कि 'शऊरी ईमान' इन्सान के फ़िक्र–ओ–अमल में तबदीली लाता है और उस में 'समाजी ज़िम्मेदारी का एहसास' पैदा करता है। इस जगह उन्होंने ज़ोहरा बिन अब्दुल्लाह और रिबई बिन आमिर की बातचीत को सुबूत के तौर पर पेश किया है, जो उन्होंने सन् 17 हिजरी की मशहूर जंग–ए–क़ादसिया के मौक़े पर ईरानियों के सिपह सालार रुस्तम फ़र्रूख़ज़ाद से की थी। यह जंग हज़रत उमर के दौरे ख़िलाफ़त में हुई थी। जिसमें लश्करे इस्लाम ने ईरानी बादशाहत को ख़ाक चटा दी थी। जीतने वाले एक दस्ते की क़यादत ज़ोहरा बिन अब्दुल्लाह के हाथों में थी। जंग से पहले रुस्तम की पहली बातचीत उन ही से हुई। रुस्तम ने एक रात उन्हें बुलाया और इन अल्फ़ाज़ में सुलह की पेशकश की कि "तुम लोग हमारे पड़ोसी थे हमने तुम्हारे साथ नेकियाँ कीं तुम लोग हमारे इनामों से फ़ायदा उठाते थे। अगर कभी किसी से तुम्हें कोई ख़तरा लाहक़ होता तो हमने तुम्हारी हिमायत की और बचाया इस बात की तारीख़ गवाह है"। ज़ोहरा बिन अब्दुल्लाह ने जवाब दिया– "तुमने माज़ी की जो बातें बयान कीं वह सब सही लेकिन तुम्हें यह हक़ीक़त समझना चाहिए कि जो कल था वह आज नहीं है। हम अब वैसे नहीं रह गये कि दुनिया की लालच में रहें। हमारा मक़सद अब दुनिया नहीं आख़िरत है। जब अल्लाह तबारक–ओ–तआला ने हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा (स0) को हमारे बीच रसूल बना कर भेजा तो उन्होंने हमें एक ख़ुदा की तरफ़ दावत दी और हमने इस दीन को क़ुबूल किया। अल्लाह ने रसूल की तरफ़ वही फ़रमाई कि अगर तुम्हारे पैरो उस बात पर डटे रहें जो हमने तुम पर वही की है तो हम उन्हें तमाम अक़वाम और मज़ाहिब पर तसल्लुत और ग़लबा

बख़्शेगें। जो इस दीन से जुड़ेगा इज़्ज़त पायेगा और जो इसकी मुख़ालिफ़त करेगा वह ज़लील–ओ–रुसवा होगा।"

रुस्तम फ़र्रूख़ज़ाद ने ज़ोहरा बिन अब्दुल्लाह से दीने इस्लाम की वज़ाहत करने के लिए कहा तो ज़ोहरा ने जवाब दिया कि – "इस दीन की बुनियाद दो चीज़ें हैं अल्लाह की वहदानियत और मोहम्मद (सल्लल्लाहु वसल्लम) की रिसालत की गवाही और यह कि जो कुछ आप ने फ़रमाया वह अल्लाह की ही तरफ़ से है।"

रुस्तम ने कहा– "इसमें तो कोई हर्ज नहीं, अच्छी बात है, और क्या ?" ज़ोहरा ने जवाब दिया – "अपने जैसे इन्सानों की बन्दगी से तमाम दूसरे बन्दगाने ख़ुदा को आज़ाद कराना" रुस्तम ने कहा– "यह भी ठीक है और बताओ"। ज़ोहरा ने कहा– "तमाम इंसान एक माँ–बाप से पैदा हुए हैं।" रुस्तम ने कहा– "यह भी अच्छी बात है तो अगर हम इन चीज़ों को कुबूल कर लें तो क्या तुम वापस चले जाओगे ?" ज़ोहरा ने जवाब दिया– "हाँ अल्लाह की क़सम हम दुबारा तुम्हारी सर ज़मीन पर क़दम न रखेंगे अलावा तिजारत और ऐसे ही कामों के लिए। हमने जो कुछ कहा उसके अलावा हमारा और कुछ मक़सद नहीं है।" रुस्तम ने कहा– "लेकिन एक रूकावट अब भी बाक़ी है शहन्शाह आर्दशेर के ज़माने से हम ईरानियों के यहाँ एक रस्म चली आ रही है जो तुम्हारे दीन से मेल नहीं खाती वह यह कि निचला तबक़ा मसलन काश्तकारों और मज़दूरों को इस बात का हक़ नहीं है कि अपने पुरखों के पेशों को छोड़ कर कोई दूसरा बाइज़्ज़त पेशा अख़्तियार कर सकें क्योंकि अगर पस्त तबक़ों और उनकी औलादों को इसका हक़ दे दिया जाये कि वह अपने कामों को बदल कर अपने तबक़े में तब्दीली कर लें और अशराफ़ की सफ़ में आ जायें तो वह अपने पैर ज़्यादा फैलाने लगेंगे और आला तबक़े व शरीफ़ों से मुक़ाबले

के लिए खड़े होंगे। इसलिए बेहतर यही है कि एक किसान का बेटा यह जान ले कि उसे किसान ही होना चाहिए और लोहार के बेटे को लोहार ही होना चाहिए इसके अलावा वह दूसरे कामों का हक़ नहीं रखते और इसी तरह सबको...."

हज़रत ज़ोहरा ने रुस्तम की बात काट कर कहा– "लेकिन हम तुम्हारी तरह अपने बीच इस तरह की पैदायशी तबक़ा बन्दी के क़ायल नहीं। हमारा अक़ीदा है कि तमाम इंसान एक माँ–बाप से पैदा हुए हैं और सबके सब बराबर और आपस में भाई हैं। हम में से हर एक को दूसरे से नेक सुलूक करने का हुक्म दिया गया है।"

रुस्तम ने इसे कुबूल नहीं किया और बात टूट गई। जंग से पहले सुलह की दूसरी बातचीत में रिबअ़ी बिन आमिर मुसलमानों के सफ़ीर बन कर गये। रुस्तम ने उनसे फिर वही सवाल किया कि आप लोग यहाँ क्यों आये हैं? रिबअी बिन आमिर ने जवाब दिया कि– "अल्लाह ने हमें भेजा है और इस बात पर मामूर किया है कि उसके बन्दों को सख़्ती और बदनसीबी से रिहाई दिलायें और ज़ुल्म–ओ–सितम के शिकार लोगों को निजात दिला कर अदले इस्लामी के साये में ले आयें। हम अल्लाह के इस दीन को जो तमाम इंसानों की बराबरी की बुनियादों पर क़ायम है, तमाम क़ौमों और मज़हब के सामने पेश करेंगे, अगर उन्होंने कुबूल कर लिया तो इस दीन के साये में खुश–ओ–खुर्रम रह कर सआदत की ज़िन्दगी गुज़ारेंगे और हमें उनसे कोई शिकायत नहीं होगी और अगर कुबूल नहीं किया तो हम उनसे जंग करेंगे। इस सूरत में या तो हम क़त्ल होकर जन्नत में जायेंगे या दुशमन पर हावी होंगे।"

रुस्तम ने कहा– "क्या तुम हमें कुछ मोहलत दे सकते हो कि हम इस पर ग़ौर कर सकें कि हमको क्या करना चाहिए।"

रिबअ़ी ने जवाब दिया– "हाँ ज़रूर कितने दिनों की मोहलत चाहिए? एक दिन या दो दिन ?" रुस्तम ने कहा कि दो एक दिन से काम नहीं चलेगा हम आपस में मशविरा करेंगे ताकि किसी नतीजे पर पंहुचा जा सके फिर हम तुम्हें बतायेंगे। रिबअी बिन आमिर ने जो इन लोगों का मक़सद समझ गये थे कि यह वक़्त गुज़ारी करना चाहते हैं जब कि पैग़म्बरों की सुन्नत और रहबरों के अमल के मुताबिक़ इन मौक़ों पर तीन दिन से देर करना जायज़ नहीं। इसलिए रुस्तम को जवाब दिया कि मैं तुम्हें तीन दिन की मोहलत देता हूँ कि तुम तीन बातों में से अपने लिए किसी एक चीज़ को चुन लो :–

"एक या इस्लाम ले आओ इस सूरत में हम जिस रास्ते से आये हैं उसी रास्ते वापस लौट जायेंगे तुम्हारी सर ज़मीन तमाम नेअ़मतों के साथ तुम्हारी है। लेकिन दूसरी सूरत में या जज़िया देना कुबूल करो या जंग के लिए तैय्यार हो जाओ।" रिबअी बिन आमिर की इस पुर–एत्माद बातचीत से हैरत ज़दा होकर रुस्तम ने कहा कि मालूम होता है कि तुम ही सिपाहे सालार हो जो हम से इक़रार ले रहे हो। रिबअी ने जवाब दिया कि नहीं मैं अपने लश्कर का एक मामूली सिपाही हूँ लेकिन तमाम मुसलमान एक जिस्म के हिस्से हैं और सब एक जैसे हैं अगर उनमें का छोटे से छोटा आदमी भी किसी को अमान दे तो ऐसा है कि जैसे सबने पनाह दी हो। सब एक दूसरे के वायदे और ज़बान का ऐहतराम करते हैं।

रुस्तम इस बातचीत से मुतास्सिर तो बहुत हुआ लेकिन इस्लाम कुबूल करने का फ़ैसला नहीं कर सका। जंग हुई और ईरान को ऐसी हार हुई कि तारीख़ में यादगार रह गई। लेकिन आप यह देखिये कि हुआ क्या था? दर असल हुआ यह था कि ईरानियों ने इस्लामी बराबरी के उसूल को ठुकरा दिया था जबकि मुसलमान तबक़ाती निज़ाम को ज़ुल्म और ना–इन्साफ़ी क़रार दे

रहे थे। इसके बर ख़िलाफ़ हिन्दुस्तान में क्या हुआ?

यहाँ मुसलमानों ने इस ज़ुल्म व ना–इन्साफ़ी यानी पैदाइशी बुलन्दी और पस्ती के तबक़ाती निज़ाम को न सिर्फ़ यह कि जड़ से उखाड़ने की कोई कोशिश नहीं की और उसे बर्दाश्त किया बल्कि ख़ुद भी *"इन्ना अकरमाकुम इन्दल्लाहि अतक़ाकुम"* के कुरआनी उसूलों को भुला कर ज़ात–पात और तबक़ात में बट गये फिर फ़िरक़ों और मसलकों और इन्सान साख़्ता सियासी नज़रियात और पार्टियों की बुनियाद पर भी गिरोह दर गिरोह तक़सीम होकर अल्लाह की लानत में गिरफ़्तार हो गये। हाँलाकि उम्मते मुसलिमा की फ़र्द होने की हैसियत से मुसलमान पर दोहरी ज़िम्मेदारी आयद होती है।

जंगे क़ादसिया के मुन्दरजा बाला वाक़्ये की बुनियाद पर साफ़ है कि ज़ोहरा बिन अब्दुल्लाह और रिबअी बिन आमिर ने रुस्तम के सामने जिन साफ़ और आसान लफ़्ज़ों में दीन का तार्रुफ़ पेश किया था वही अस्ल और आसान ईमान और सही इस्लामी फ़िक्र का तर्जुमान था। यानी अल्लाह तबारक–ओ–तआला ने जो पैग़ाम अपने बन्दे ख़ास हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा (स0अ0) के ज़रिये लोगों तक पंहुचाया वह अपने अन्दर दो पहलू रखता है एक अपने मालिके हक़ीक़ी के सामने मुकम्मल ख़ुद–सुपुर्दगी अख़्तियार करना और दूसरे दीगर मज़लूम बन्दगाने इलाही को हर तरह के ज़ुल्मो सितम से रिहाई दिलाकर अदले इस्लामी के साये में ले आना।

मिर्ज़ा जावेद मुर्तज़ा साहब ने लिखा है कि आसान दीन और शऊरी ईमान बताता है कि ज़ुल्म से टकराना हर मुसलमान का पहला फ़र्ज़ है। लेकिन हुआ यह है कि पिछले पांच–साढ़े पांच सौ साल के दौरान पेश आने वाली तब्दीलियों ने मुसलमानों को उनके इस अव्वलीन फर्ज की जानिब से गफलत में डाल दिया

नतीजा उसका यह हुआ कि आज मुसलमान ख़ुद दुनिया के हर ख़ित्ते में ज़ुल्मो सितम का निशाना बने हुये हैं और मुसलमान का ख़ून और उसकी इज़्ज़त व आबरू सस्ती चीज़ हो गई है, उनकी जांने, माल और कुदरती ज़मीनी ज़ख़ीरे सब ग़ैरों बल्कि दुश्मनों के क़ब्ज़े और इस्तेमाल में चले गये हैं।

सवाल यह है कि क्या बेहतरी आ सकती है? मिर्ज़ा जावेद मुर्तज़ा ने अपने मज़मूनों में इस बात का जवाब हाँ में दिया है वह लिखते हैं कि हम यक़ीनन ज़िल्लत से छुटकारा हासिल करके अपनी इज़्ज़त बहाल कर सकते हैं शर्त यह है कि हम ख़ुद अपनी फ़िक्र–ओ–फ़हम को इस्तेमाल में लायें। रस्मी और तक़लीदी ईमान के बजाये हम शऊरी ईमान वाली अपनी दोहरी ज़िम्मेदारियों को समझ ले कि हम अपने आमाल के लिए भी जवाबदेह हैं और माहौल के लिये भी जवाब देह हैं। हम चाहे जितनी इबादतें अंजाम दें लें अगर अपने आस–पास के हालात से बेतव्वजही बरतें, अपने समाज की बुराइयों को दूर करने की कोशिश न करें तो ऐसी बे–रूह इबादतें न हमारे काम आयेंगी न दूसरों ही को कोई फ़ायदा पंहुचा सकेंगीं।

जावदे मुर्तज़ा साहब का मौकफ़ यह है कि हमारे सामने रसूल की सीरत बेहतरीन नमूने के तौर पर मौजूद है जिस माहौल में रसूल अकरम (स0अ0) ने आंखे खोलीं और इस्लाम की तब्लीग़ की वह बहुत कुछ हमारे माहौल से मिलता–जुलता है। शिर्क और बुत परस्ती का दौरे दौरा था। समाजी ताल्लुक़ात की बुनियाद इंसाफ और बराबरी निज़ामे रहमत–ओ–राफ़त पर नहीं बल्कि क़बीला परस्ती और निज़ाम ज़ुल्म पर अस्तवार थी। तमाम ग़ैर अख़लाक़ी बातें और आमाल–ए–क़बीहा, औबाशी, अय्याशी, और शराब नोशी वग़ैरा 'शोरफ़ा' से वाबस्ता होकर फ़ख़रिया शायराना इज़हार का मौज़ू बन गये थे। यानी बुराईयाँ बदनामी और ज़िल्लत

के बजाये फ़ख़्र की वजह समझी जाती थी। वह लोग जो जलील–उल–क़द्र पैग़म्बर हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम और उनकी बा–बरकत औलादों की नस्ल से थे, हर तरह की एख़लाक़ी और मज़हबी बुराईयों से आलूदा थे। जनाबे इब्राहीम तारीख़–ए–इन्सानी के सबसे बड़े बुत शिकन और तौहीद के सबसे बड़े दायी और मुबल्लिग़ थे। उनकी औलादें और उनकी उम्मत तौहीद से दूर और कुफ्र व शिर्क की ज़ुलमतों में पड़ी हुई थी। मज़हबी रस्में खुराफ़ात का पुलिन्दा हो चुकी थीं, संजीदगी और शराफ़त की जगह शोर शराबे ढोल ताशे और बेहूदा शायरी और गुफ़्तगू ने ले ली थी।

मिर्ज़ा जावेद मुर्तज़ा लिखते हैं कि हमारे नबी ने ऐसे माहौल में लोगों को तौहीद की दावत दी थी। "कल्मा ला इलाहा इल्लल्लाह" कोई जादू मन्तर नहीं बल्कि यह लोगों के सोचने के ढंग में तब्दीली लाने का ज़रिया है। यह फ़िक्री इन्क़िलाब की बुनियाद है। यानी हमारी ज़िन्दगी का मक़सद न रस्म परस्ती है न बाप दादा की तक़लीद, बल्कि अल्लाह की अता की हुयी तमाम सलाहियतों को इस्तेमाल करते हुये बस उसी की खुशनूदी को हासिल करने के लिए अपनी तमाम कोशिशों को इस ओर लगा देना कि हम सिर्फ़ उसी से डरें, और तमाम तकालीफ़ व मसायब में उस ही पर भरोसा रखें और सिर्फ़ उसी से हर तरह की मदद और साबित क़दमी तलब करे और इस बात का यक़ीन रखें कि उस इलाह–ए–वाहिद और ला–शरीक के सिवा किसी में कोई कूवत व ताक़त नहीं (ला–हौल व ला–कूव्वता इल्ला बिल्लाह)। यह ईमान जो फ़िक्र व फ़हम की बुनियादों पर क़ायम होता है, इन्सान की रूह को बुलन्दी और सूकून बख़्शता है। वह अपने ख़ालिक़ और रब्ब की खुशनूदी हासिल करना चाहता है। वह चाहता है कि मैं ऐसी ज़िन्दगी बसर करूँ जिसमें मेरे मालिक और

पालनहार की रज़ा शामिल हो। इसके लिए ज़रूरी है कि वह अपने मौजूदा तर्ज़–ए–ज़िन्दगी और जिन बातों को मज़हबी ज़रूरत समझ कर अन्जाम दे रहा है उनका तजज़िया करे। वह ग़ौर करे कि वह अपने लिहाज़ से जिन मज़हबी उमूर को अदा कर रहा है वह उसकी हक़ीक़ी ज़िम्मेदारी में मददगार हैं या यह कि रूकावट बने हैं ? उसको यह भी फ़िक्र रखनी चाहिए कि जब आख़िरत में वह अपने हक़ीक़ी मालिक के सामने पेश होगा तो वहाँ उसे अपने आमाल की जवाब देही में कौन सी बातें मदद पंहुचायेंगी।

हम ज़रा ग़ौर करें तो साफ़ नज़र आता है कि हमने अपनी पूरी ज़िन्दगी में कभी किसी के सामने तौहीद की दावत पेश नहीं की। हमने शिर्क के ख़ात्मे के लिए कभी कोई अमली कोशिश नहीं की। सारी दुनिया से मुंह मोड़ कर सिर्फ़ अल्लाह से लौ लगाने के बजाये हम महज़ अपने अन्दाज़ से या अपने बाप–दादाओं के बताये हुये तरीक़े के मुताबिक़ कुछ शख़्सियतों को अल्लाह का हमसर (बराबर) क़रार दे कर उन ही शख़्सियतों की ख़ुशनूदी अपने अपने अन्दाज़ से हासिल करने में लगे रहे और सब से बढ़ कर सितम यह हुआ कि शख़्सियतों के इन्तिख़ाब के इख़्तिलाफ़ की वजह से पूरी दुनिया के इन्सान और पूरी उम्मत मुख़्तलिफ़ फ़िरक़ों में बंट गयी।

इस्लाम के इन्सानी–बराबरी (मसावात) के उसूल का जनाज़ा यों निकला कि लोगों को रसूल–ए–अकरम (स0अ0) का यह पैग़ाम पंहुचाया ही नहीं गया कि– "लोगों! तुम्हारा रब्ब भी एक है और तुम्हारा बाप भी एक है। तुम सब आदम से हो और आदम मिट्टी से बने थे। जाहिलियत के तमाम ऊँच–नीच के मेयार आज मेरे पैर के नीचे हैं। तुम में अल्लाह के नज़दीक ज़्यादा इज़्ज़त वाला वही है जो सब से ज़्यादा मुत्तक़ी हो। किसी अरबी को किसी अजमी पर और किसी अजमी को किसी अरबी पर कोई

फ़ज़ीलत नहीं है सिवाये तक़वा के।"

पैदाईश की बुनियाद पर ऊँच–नीच के जाहिली नज़रिये के मुक़ाबले में बराबरी और भाई–चारे के इस आसमानी पैग़ाम को दुनिया तक पंहुचाने के बजाये हम ने ख़ुद आपस में ज़ात बिरादरी की बुनियाद पर अपने आपको बांट कर समाजी ऊँच–नीच का झूठा मेयार बना लिया जो अल्लाह और उसके रसूल के अहकाम की खुली नाफ़रमानी के सिवा और कुछ नहीं।

मिर्ज़ा जावेद मुर्तज़ा ने अपने सिलसिला–ए–मज़ामीन में मौजूदा हालात की रौशनी में लिखा है कि अगर हम वाक़यी फ़साद, बद–अमनी, ज़ुल्म, दहशतगर्दी और ना–इन्साफ़ी से बचना और अपने ख़ानदान वालों को बचाना चाहते हैं, अगर हम ज़िल्लत व रुसवाई, पस्ती और गुर्बत से बचना चाहते हैं तो हमें अपनी फ़िक्र को और अपने सोच के तरीक़े को बदलना होगा। हमको विरासत में मिलने वाले तफ़रिक़ों से ऊपर उठना होगा, दीन के मामलात में तक़लीद के अंधेरों से छुटकारा हासिल करना होगा, ख़ुद अपनी अक़्ल और अल्लाह की अता की हुई ग़ौर–ओ–फ़िक्र की सलाहियतों को इस्तेमाल करके मसायल को समझना होगा।

कुरआन करीम में अक़्ल के इस्तेमाल की मुतवातिर दावत दी गयी और यह वाज़ेह कर दिया गया कि जो लोग अपनी अक़्ल का इस्तेमाल नहीं करते हम उन पर कुफ़्र की निजासत (रिज्स) मुसल्लत कर देते हैं, और यह भी बता दिया गया है कि ज़मीन पर हरकत करने वाली तमाम मख़लूक़ात में सबसे बुरे वह गूँगे और बहरे हैं जो अपनी अक़्ल का इस्तेमाल नहीं करते। मुसन्निफ़ का तजज़िया यह है कि आज जो मुसलमान मुख़्तलिफ़ फ़िरक़ों और मसलकों में बंटे हुये हैं वह दर–अस्ल उनका ज़ेहनी गुलामी की ज़ंजीरों में जकड़ा होना है। ज़हनी और फ़िक्री गुलामी की यह ज़ंजीरें उनकी

फ़िक्रों को कैद किये हुये हैं जो उन्हें न अपने आस–पास के हालात का सही मुशाहिदा करने देती है और न ही उन्हें अपनी हकीकी दीनी ज़िम्मेदारियों की तरफ़ मुतवज्जेह होने देती है।

जावेद मुर्तज़ा साहब ने बिल्कुल सही लिखा है कि आज ज़रूरत इस बात की है कि हम दीन को उसके बुनियादी उसूलों से समझें जो कुरआन और नबी–ए–करीम की नेक सीरत से साबित है। फ़ालतू और ग़ैर ज़रूरी मसायल में उलझने के बजाये (जिनका न हमारी अमली ज़िन्दगी से कोई ताल्लुक़ है और न उनके बारे में हमसे क़ियामत में कुछ पूछा जायेगा) हमें चाहिए कि हम हर तरह के ज़ुल्म (बेशक शिर्क सबसे बड़ा ज़ुल्म है), हर तरह की ना–इन्साफ़ी और (पैदाईशी बुलन्दी व पस्ती के बातिल उसूलों पर क़ायम) हर तरह की ना–बराबरी को ख़त्म करने की ख़ुद अपनी ज़िम्मेदारियों का अहसास करें और इस सिलसिले में अपनी अपनी सलाहियत, क़ाबलियत, वक़्त और हिकमत–अमली के मुताबिक़ अमल करने की कोशिश करें।

मिर्ज़ा जावेद मुर्तज़ा ने अपने बेश क़ीमती सिलसिला – ए–मज़ामीन में कुरआन करीम के इस हुक्म "बेशक अल्लाह किसी क़ौम की हालत में बदलाव नहीं लाता जब तक वह लोग अपने में तब्दीली न लायें।" की रौशनी में कई अमली व फ़िक्री तजावीज़ के अलावा दर्ज ज़ैल तीन नुकाती फ़ार्मूला भी पेश किया हैः–

1. हर क़ीमत पर मुकम्मल इत्तिहाद–बैनल–मुस्लिमीन को फ़रोग़ देना – वह इत्तिहाद जो वहदत–ए–कल्मा और कल्मा–ए–वहदत की बुनियाद पर हो।

2. हिन्दू–मुस्लिम मुनाफ़िरत न होने देना – क्योंकि नफ़रत का माहौल तब्लीग़ की राह में सबसे बड़ी रूकावट होता है।, और

3. तौहीद की तब्लीग़ करना और हर तरह की शिर्क व बुत परस्ती की मुख़ालिफ़त करना और उसके ख़ात्मे की अमली कोशिश करना।

जावेद मुर्तज़ा साहब ने इस जगह यह वज़ाहत भी की है कि वह तमाम अक़ायद व नज़रियात जिन्होंने मुसलमानों के दरमियान दीवारें उठा दी हैं चाहे वह मसलक की बुनियाद पर हों, या ज़ात बिरादरी, रंग, नस्ल, और ज़बान की बुनियाद पर हों – उनकी इस्लाम–ए–हक़ीक़ी में, अल्लाह के पसन्दीदा और आसान दीन में हर्गिज़ कोई गुंजाईश नहीं है। और यह सब भी एक तरह के बुत हैं जिनको तोड़े और ढाये बग़ैर हक़ीक़ी इत्तिहाद और उम्मत–ए–वाहिदा का क़ियाम मुमकिन नहीं।

लिहाज़ा जब तक हम अपनी फ़िक्र में तब्दीली नहीं लायेंगे, अपने खुद के गढ़े हुये अक़ायद के चक्र–व्यूह को नहीं तोड़ेंगे और खुद अपने क़ायम किये हुये नज़रियात के जाल से बाहर नहीं आयेंगे, न हमारे अमल में तब्दीली आयेगी और न ही हमारे हालात बदलेंगें।

किताब फ़िक्र–ओ–फ़हम के लेखक मिर्ज़ा जावेद मुर्तज़ा एडवोकेट से उनके ई–मेल **jawedmurtaza@yahoo.co.in** पर सम्पर्क किया जा सकता है। जो लोग तहरीक दीन फ़हमी से मज़ीद वाक़फ़ियत हासिल करना चाहते हैं वह उनकी वेब साईट **www.deenfahmi.org** पर भी लाग–ऑन कर सकते हैं। उनका मोबाईल नं0 **09415544115** है। किताब "फ़िक्र–ओ–फ़हम" और लेखक की दीगर किताबें दर्ज ज़ेल पते से बराहे रास्त भी हासिल की जा सकती है।

AL-MURTAZA PUBLICATIONS
501-2, ARIF ASHIANA,
OPPOSITE LOHIA PARK, CHOWK,
LUCKNOW-226 003

जावेद मुर्तज़ा साहब की पुस्तकें

1. दीन फ़हमी
2. सिरात-ए-मुस्तक़ीम
3. दीन का बुनियादी तसव्वुर, तक़लीद और इत्तिबा
4. बाबरी मस्जिद की शहादत के बाद
5. फ़िक्र-ओ-फ़हम
6. हयात-ए-मोहम्मद(स0अ0व0), एक मुख़्तसर तार्रुफ़
7. सफ़र-ए-आख़िरत
8. बी0जे0पी0 सदर के नाम खुला ख़त
9. राम और इस्लाम
10. ख़ुत्बा-ए-ईदुल-फ़ितर

किताबें हासिल करने के लिए राब्ता करें :

अल-मुर्तज़ा पब्लीकेशन्स

501-2, आरिफ़ आशियाना, लोहिया पार्क के सामने,

चौक लखनऊ 226003

वेब साइट www.[illegible].org

ई-मेल [illegible]@yahoo.co.in

फोन [illegible]